स्कूली बच्चों के बीच चर्चा में प्रेमचंद

संजय कुमार सुमन*

भारतीय विद्यालयी शिक्षा में, विशेषकर भाषा और साहित्य की पाठ्यपुस्तकों में आवश्यकतानुसार साहित्य और साहित्यकारों की रचनाओं को शामिल किया जाता रहा है। कक्षाध्यापन और शिक्षण-प्रशिक्षण के दौरान भी रचनात्मकता और सृजनात्मकता को ध्यान में रखकर उसे अनेक तरीकों से पढ़ा व पढ़ाया जाता रहा है। विद्यार्थियों को पढ़ने-पढ़ाने के लिए, चर्चा को बहुत ही सुंदर, सरस, आकर्षक और महत्वपूर्ण तरीका माना जाता रहा है। चर्चा को सीखने के सार्थक हथियार के रूप में भी प्रयोग किया जाता रहा है। वर्तमान युग में तकनीकी के सहारे स्व-अध्ययन और जीवनपर्यंत शिक्षण के लिए चर्चाओं की भूमिका स्वयंसिद्ध है। प्रस्तुत लेख में, लेखक स्कूली बच्चों के बीच होने वाली चर्चाओं में भारत के प्रसिद्ध साहित्यकार, समाजसेवी और स्वतंत्रता सेनानी प्रेमचंद पर होने वाली चर्चाओं के महत्वपूर्ण बिंदुओं की ओर इशारा करते हुए उन पर आवश्यक और व्यापक ढंग से चर्चा की वकालत करते हैं, ताकि उनका विराट, व्यापक और महान व्यक्तित्व सामने आ सके, जिससे विद्यार्थियों में साहित्य, भाषा, समाज, शिक्षा और इतिहास के आपस में जुड़े हुए तथ्यों व विचारों की समझ विकसित हो सके।

चर्चा करना मनुष्य का स्वाभाविक कार्य है और प्रत्येक चर्चा में कोई तथ्य, कथ्य और सत्य होता ही है। कभी-कभी काल्पनिक चीज़ों पर भी चर्चाएँ होती हैं। इसी तरह चर्चा सभी उम्र के लोगों के बीच हुआ करती है। मगर समाज में विशेष आवश्यकता वाले समूह के व्यक्ति और बच्चों के बीच होने वाली चर्चाओं के रूप, गुण, आकार-प्रकार, क्षेत्र और प्रक्रिया अलग तरह के होते हैं। चर्चा से लाभ और हानि दोनों होते हैं। इसलिए, सभी जगह, सभी चीज़ों पर, सभी तरह से, सभी के द्वारा चर्चा करने पर भी सामाजिक और सरकारी नियमानुसार कुछ न कुछ पाबंदी का प्रावधान होता है। इसलिए, हमारे समाज में हानिकर चर्चाओं से हमेशा दूर रहने की कोशिश की जाती है। व्यक्ति की उम्र, शिक्षा, अवस्था और स्थान तथा समय की आवश्यकता के अनुसार ही चर्चाओं का विषय-क्षेत्र भी तय होता है। बुज़ुर्गों के बीच में छिड़ी चर्चाओं से भी कम लाभ-हानि नहीं होती है। देखा तो यह भी गया है कि सृजनात्मकता के सूत्रों

* *प्रोफ़ेसर*, हिंदी भाषा शिक्षा विभाग, एन.सी.ई.आर.टी., श्री अरविंद मार्ग, नयी दिल्ली 110016

में इन चर्चाओं का बहुत ही अधिक महत्व होता है। कभी-कभी विध्वंसात्मकता से भी इसका संबंध हो जाता है। इसलिए आज भी हर तरह के कार्य के पूर्व चर्चा करने की प्रवृति सभी जगह देखी जा सकती है।

आजकल सोशल मीडिया पर घर, आस-पास, गाँव, चौपाल समेत पूरी दुनिया की चीज़ों, तथ्यों, कथ्यों, सत्यों एवं असत्यों पर चर्चाओं का युद्ध जैसा माहौल शुरू हो गया है। "बिना विचारे जो करे सो पाछे पछताय" के पीछे का शायद सत्य भी चर्चा-विमर्श करने के महत्व को दर्शाता है। इसलिए, चर्चा व विमर्श करने के कार्य को साझेदारी, लाभकारी और अच्छा कार्य भी माना गया है। मगर चर्चा से होने वाले नुकसानों से बचने के लिए ध्यान दिया जाए कि चर्चा कब, कितनी, क्यों, किस पर, कहाँ, किस लिए, कैसे और कब तक करें? यहाँ तो आपको सर्वत्र देखने को मिलेगा कि इन चर्चाओं से स्वयं प्रेमचंद के व्यक्तित्व को तो नुकसान पहुँचा ही है और उन पर छिड़ी अधूरी चर्चाओं से बच्चों को भी ज़्यादा नुकसान हुआ है। जहाँ-तहाँ, जब-तब और जैस-तैसे अनियमित व अनियोजित ढंग से छोटे-बड़े स्तर पर चर्चाएँ छेड़ दी जाती हैं। इसमें सभी क्षेत्रों से लोग शामिल हो जाते हैं। कभी-कभी तो लगता है कि यह सब जानबूझकर कुछ उद्देश्यों से प्रेरित होकर किया जाता है। इसलिए इसके परिणाम अच्छे और बुरे दोनों होते हैं। लगातार अगर बुरे उद्देश्यों से अभिप्रेरित होकर ही चर्चाएँ जारी रहें तो इसके परिणाम ज़ाहिर है कि बुरे ही होते हैं। हाँ, किसके लिए यह कितना अच्छा या बुरा होगा, यह उस समय की परिस्थितियाँ और परिवेश पर निर्भर करता है। प्रेमचंद पर भी कुछ ऐसा ही हुआ है। स्कूल, कॉलेज, गाँव, घर और चौपाल से लेकर साहित्य, संस्कृति, अर्थ और राजनीति की अनेक संस्थाओं द्वारा सभाओं, सम्मेलनों और संगोष्ठियों में उन पर अनवरत चर्चाएँ जारी हैं।

देश के शिक्षित व बुद्धिजीवी कहलाने वाले तथाकथित समाज के जागरूक वर्ग लगातार पत्र-पत्रिकाओं, शिक्षण-प्रशिक्षण और सभा-सम्मेलनों के अंतर्गत उन पर उनके रचना काल से ही चर्चा-विमर्श कर रहे हैं। इसलिए, कभी-कभी प्रेमचंद को हिंदू व ब्राह्मण विरोधी तथा दलित व नारी विरोधी भी बताया गया है। इसी प्रक्रिया में उन्हें हिंदी का एक उच्च कोटि का साहित्यकार मानकर ही सभी चर्चाओं का इतिश्री कर दिया जाता है। उच्च स्तरीय अकादमिक और शैक्षणिक स्तर पर शिक्षण-प्रशिक्षण के लिए प्रेमचंद को यथार्थवादी, आदर्शवादी, जनवादी, मार्क्सवादी, समाजवादी, ग्रामवादी, राष्ट्रवादी और सुधारवादी जैसे कथाकार, उपन्यासकार या साहित्यकार बताकर चर्चा-विमर्श जारी है। कहीं उन्हें देशभक्त, समाज सुधारक, चिंतक तथा किसान, मज़दूर एवं गरीब वर्ग के हितैषी के रूप में भी मानने की कोशिश की जा रही है। यह प्रेमचंद पर शिक्षितों-बुद्धिजीवियों द्वारा छेड़ी गई चर्चाओं का ही परिणाम है कि भारत में कुछ कम पढ़े-लिखे वर्ग के लोग भी प्रेमचंद को किसी न किसी रूप में जानते रहे हैं। लेकिन हिंदी ही नहीं अन्य भाषाओं में पढ़ने-लिखने वाले कुछ वर्गों तक प्रेमचंद किसी भी रूप में अगर आज हैं तो यही उनकी अखिल भारतीय पहचान का प्रमाण है। इसलिए, प्रेमचंद को मात्र साहित्यकार ही नहीं, बल्कि भारत के विशिष्ट व्यक्तित्वों की श्रेणी में सूचीबद्ध करने पर अवश्य

चर्चा की जानी चाहिए। बच्चों की पाठ्यपुस्तकों में प्रेमचंद को पाठों के रूप में तथा प्रेमचंद पर बच्चों के बीच में व्यापक स्तर पर चर्चा होनी ही चाहिए। दुर्भाग्य से आज़ादी के इतने वर्षों के बाद भी स्कूली बच्चों के बीच चर्चा में प्रेमचंद आधे-अधूरे रूप में ही पेश किए गए हैं। इसलिए स्कूली बच्चों के बीच प्रेमचंद मात्र हिंदी के उपन्यासकार, कथाकार या साहित्यकार के रूप में ही पाए गए हैं। प्रजातांत्रिक भारत के स्कूलों में पढ़ने वाले बच्चों को भाषा और साहित्य की पाठ्यपुस्तकों या पूरक पुस्तकों में प्रेमचंद की कथाओं/रचनाओं या उनके बचपन के कुछ संस्मरणों या अभ्यासों के ब्यौरों-विवरणों को जगह मिली हुई है, जबकि साहित्य और भाषा शिक्षण की सामग्रियों में उन्हें विशिष्ट व्यक्तित्व बनाकर विशिष्ट साहित्यकारों के रूप में उनकी रचनाओं को पूरा स्थान दिया जा सकता है। सामान्यत: भारतीय स्कूली पाठ्यपुस्तकों में प्रेमचंद का परिचय निम्न प्रकार से दिया गया है —

प्रेमचंद — प्रेम से रखा गया नाम। बचपन का नाम धनपत राय और नवाबराय। शिक्षा बी.ए.। पेशा स्कूल इंसपेक्टर, संपादक, साहित्यकार। 31 जुलाई, 1880 को उत्तर प्रदेश के लमही के कायस्थ परिवार में जन्म। पहली पत्नी का परिचय नहीं। शिवरानी देवी पत्नी के रूप में। अमृतराय पुत्र। रचनाएँ — कर्मभूमि, निर्मला, कायाकल्प, गबन, गोदान (उपन्यास)। हंस के संपादक। जब्त 'सोजेवतन' सहित हिंदी-उर्दू में सवा तीन सौ कहानियों के लेखक।

भारतीय विद्यालयी पाठ्यपुस्तकों में ऊपर से नीचे स्तर तक सभी जगह इनके हिंदी के कथा सम्राट वाले परिचय को सबसे अधिक दिया जाता है। आज युग बदल चुका है। नवाबों और सम्राटों के युग से व्यावहारिक रूप से अपरिचित बच्चे पूर्णत: किताबी ज्ञान द्वारा ही नवाब या सम्राट से परिचित होते हैं और इसी क्रम में बच्चे किशोर भी हो जाते हैं। इसलिए सम्राट मानना भी बच्चे को अटपटा लग सकता है, जबकि स्वयं प्रेमचंद को भी सम्राट होना बिलकुल पसंद नहीं था। तभी तो उन्होंने कहा था कि— "मुझे खुद उपन्यास-सम्राट कहलाना पसंद नहीं। मैं कसम खा सकता हूँ कि मैंने इस उपाधि की कभी अभिलाषा नहीं की। यदि 'साहित्य-पाठक' महोदय किसी तरह मुझे इस विपत्ति से बचा दें तो मैं उनका एहसान मानूँगा।" ('प्रेमचंद की प्रेमलीला का उत्तर' समालोचक, शब्द संवत् 1983)।

मगर प्रेमचंद के इस कथन को न तो तब किसी ने तव्वजो दी और न ही आज। बच्चों को बताया जा रहा है कि प्रेमचंद उपन्यास सम्राट और कथा सम्राट हैं। आज बच्चों के सामने नवाबों की नवाबी का नमूना भी बमुश्किल से ही मिल सकता है, क्योंकि आधुनिकता की दुनिया ने उसे धूमिल कर दिया है। आज नवाब स्वयं अपने नए मापदंड को निर्धारित कर नवाब से नेता या अभिनेता में तब्दील कर दिए गए हैं। इसलिए कथा सम्राट या उपन्यास सम्राट के रूप में प्रेमचंद को मानकर बच्चे अपनी पाठ्यपुस्तक में दी गई कहानियों को बस वर्गाध्यापन और वर्गोन्नति के लिए ही पढ़ते हैं। आज प्रेमचंद और उनकी कथा-कहानियों से बच्चे कितने जुड़ते हैं, यह तो उनके इर्द-गिर्द दूरदर्शन, सिनेमा और नाटकों की कहानियों के सनसनीखेज़ प्रचार-प्रसार

को देखकर अंदाज़ा लगाया जा सकता है। प्रेमचंद आज भी कथा सम्राट या कलम के सिपाही के रूप में जाने जाते हैं या नहीं, इस पर भी चर्चा होनी चाहिए। कथा सम्राट बच्चों को अबूझ पहेली की तरह लगता है। प्रेमचंद की कहानियों को पढ़ते-पढ़ाते हुए जब शिक्षक-प्रशिक्षक बच्चों को यह बताते हैं कि वे कथा सम्राट थे, यानि कथा लिखने में वे सर्वोच्च थे, तो बच्चों को बहुत आश्चर्य होता है। सत्य-असत्य के किसी भी तथ्य को कथा के रूप में सुनना-सुनाना बच्चों का स्वाभाविक गुण माना गया है। इसलिए अपने सगे-संबंधियों और हम उम्रों से किसी भी घटना, तथ्य, सत्य आदि के बारे में वे बड़े चाव से कुछ भी कहते-सुनते मिल जाएँगे। ज़ाहिर है कि ये 'सभी कुछ ही' कथाएँ नहीं होतीं, मगर ये 'सभी कुछ ही' कथाओं के इर्द-गिर्द और मूल में होता है, इसे तो माना ही जा सकता है। इसलिए, बच्चों के समक्ष तो शायद जानने, सुनने और पढ़ने-लिखने के लिए सबसे अधिक और प्रथमत: कथाओं का ही संसार उन्हें घेरे रहता है। चाहे वह कथा लिखित, मौखिक या चित्रों की दुनिया की ही क्यों न हो और उसका कथानक किसी भी संदर्भ से जुड़ा हुआ क्यों नहीं हो। कथाओं के रूप-गुणों की विविधताओं से भी बच्चों का ज़्यादा वास्ता नहीं होता। वे अच्छी-बुरी, आकर्षक-विकर्षक, भूत या वर्तमान की कथाएँ सुनना या कहना पसंद करते हैं। जिसे वे बगैर किसी प्रयास के कथात्मक ढंग से सुनना-सुनाना बहुत अधिक पसंद करते हैं। उन्हें स्वयं लगता है कि कथाएँ कहने वाला कोई जादूगर, पंडित, खेल-तमाशे वाला या कोई सामान्य व्यक्ति ही हो सकता है। इसलिए, सम्राट वाला रूप उनके सामने थोड़ा अव्यावहारिक रूप में आता है। इसलिए कथा सम्राट के रूप में प्रेमचंद को मानना उसके लिए मात्र किताबी पाठ का विषय होता है, न कि प्रेमचंद से आकर्षण का विषय। इसी तरह प्रेमचंद के परिचय के बतौर उल्लेखित गाँव 'लमही' भी उन्हें ज़्यादा आकर्षित नहीं करता। एक आम भारतीय गाँव की तरह उनके मन में लमही की भी तस्वीर आती है और फिर उनके ग्रामीण परिवेश के लगातार परिवर्तित माहौल में उन्हें बहुत ज़्यादा कुछ आकर्षित भी नहीं करता है। आधुनिक, वैज्ञानिक और शहरीकृत युग में लमही कोई विशेष तरह का गाँव होने का गुण और पहचान प्रदर्शित करने वाला होता तो बच्चे उसे जानने-देखने को अवश्य आकर्षित होते। आज तो आम भारतीय गाँवों के खेत-खलिहानों के बीच पर्यावरणीय आकर्षण, खेलकूद व माहौल भी खत्म हो रहा है, जो प्रेमचंद के ज़माने में था। कहीं-कहीं अगर यह किसी रूप में उपलब्ध भी है तो 'लमही' ही क्यों? बच्चे अपने आस-पास आसानी से उपलब्ध ग्रामीण संस्कृति के उपादानों को प्राप्त कर खुश हो सकते हैं। इसलिए, प्रेमचंद का लमही गाँव उन्हें ज़्यादा प्रभावित नहीं कर पाता है।

प्रेमचंद के बचपन का नाम नवाबराय था या धनपत राय, उससे भी बच्चों को विशेष आकर्षण नहीं मिला। यह बालपन के सहज सुलभ चाव और स्वभाव के कारण ही होता है। इसलिए, नाम विशेष के आधार पर प्रेमचंद भी उन्हें ज़्यादा आकर्षित नहीं करते।

प्रेमचंद आज़ादी के पूर्व वाले हिन्दुस्तान से जुड़े हैं, जहाँ अधिसंख्य भारतीयों को अंग्रेज़ों के आतंक से लड़ना था। उसमें भी प्रेमचंद अपने

ज़माने के संपन्न और शिक्षितों की ज़िम्मेदारी ज़्यादा मानते थे और जनता की बदहाली के कारण उसकी सही ज़िम्मेदारी ज़्यादा मानते थे। आज तो बहुराष्ट्रीयकरण, वैश्वीकरण और आधुनिकीकरण ने लोगों को बढ़ रही समस्याओं के सामने और भी अकेला कर दिया है। सभी जगह अपनी ढपली अपना राग का स्वर सुनाई पड़ता है। भला इस स्थिति में बच्चों को प्रेमचंद का ज़माना क्यों आकर्षित करे? बच्चे अपने ज़माने के आकर्षण से पसोपेश की स्थिति में रहते हैं। देश में कुछ महापुरुषों की रचनाओं में इतिहास, भूगोल, समाज आदि तो मिल सकता है, परंतु इसमें प्रेमचंद अकेले होंगे जिनमें स्वाधीन भारत का जीता-जागता परिवेश मिलता है। मगर वे मात्र साहित्यकार हैं कोई विशेष भारतीय महापुरुष नहीं। इसलिए साहित्यकारों द्वारा रचे परिवेश से बच्चे कितना प्रभावित होंगे, यह नहीं कहा जा सकता। प्रेमचंद के अपने व्यक्तित्व और कृतित्व के महान गुण और विशेषताएँ हैं कि उसमें चर्चा की गुंजाइश बरकरार है, क्योंकि प्रेमचंद को विद्यालयी स्तर पर पढ़ने-लिखने के दौरान बच्चे अवश्य पढ़ते ही हैं और आगे की पढ़ाई के दौरान भी वे प्रेमचंद को पढ़ते हैं। इसलिए प्रेमचंद पर सही सिरे से चर्चा की शुरुआत करने की आवश्यकता है। कहा जा सकता है कि आज तक जो भी चर्चाएँ हुई हैं, उसमें प्रेमचंद को मात्र प्रासंगिक बनाकर रखा हुआ है।

मगर सूचना और क्रांति के इस युग में जहाँ पूँजीवादी व्यवस्था दुनिया के कमज़ोर, किसान-मज़दूर और शोषितों के संघर्षों की कहानी को दबा छिपाकर, अपने लोभ-लाभ के कारण, अपने ढाँचे और साँचे में आकर्षक और मनमोहक अंदाज़ में किसी भी नाम, जगह, तथ्य, सत्य, विचार, विचारधारा और आंदोलनों को परोसने में कामयाब हो रही हो, वहाँ भारत के महान व्यक्तियों की सही पहचान के भी धूमिल होने का संकट अवश्यंभावी है। वैश्विक समाज में बाज़ार द्वारा आकर्षक, मनमोहक और खूबसूरत रूप में सूचना और जनसंचार की विभिन्न तकनीकों का इस्तेमाल कर साहित्य, गीत, संगीत, कथा-कहानी और अन्य सुविधाएँ सुलभ कराई जा रही हैं। कहानी, कविता, आलेख, संस्मरण, जीवनी, उपन्यास आदि चंद मिनटों में ही क्लिक करने के बाद ही श्रृव्य व दृश्य के साथ किसी भी भाषा में देखना एवं सुनना संभव हो गया है। ज़ाहिर है कि ज्ञान को संचित करने के माध्यमों में वाचन और श्रवण कौशलों का ज़बरदस्त योगदान रहा है और सामाजिक प्रयासों से इसका महत्व आगे भी दिखाई पड़ता है। इसलिए बच्चों के बीच चर्चा में प्रेमचंद को रखे जाने की अनिवार्य आवश्यकता है। वह इसलिए कि वे मात्र एक साहित्यकार ही नहीं, वे एक देशभक्त, स्वतंत्रता सेनानी, मानवतावाद और प्रजातंत्र के सच्चे पैरोकार थे। उनको कलम के सिपाही, मज़दूर और सम्राट वाला व्यक्तित्व, इस डिजिटल दुनिया में भी आधुनिक रूप-रंग के साथ पेश करने की ज़रूरत है। भारत में अनेक महापुरुष हुए जो अपने अलग-अलग क्षेत्रों में अलग-अलग ढंग से कार्य कर महान हुए। क्या प्रेमचंद महापुरुष नहीं थे? वे दूसरे भारतीय महापुरुषों से किस तरह अलग हैं? इस पर चर्चा की ही जानी चाहिए?

अपने लेखन कर्म से प्रेमचंद ने भारत की सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक और आर्थिक सुंदरता को तलाशने का अभूतपूर्व कार्य किया है, जिसे समाज सुधार, राजनीति, सांस्कतिक-चिंतन, आर्थिक नियोजन कहा जा सकता है। अपने ज़माने का सत्य— गरीबी, अशिक्षा-कुशिक्षा, जाति व संप्रदायवाद, नारी स्वातंत्र्य, दलितों-शोषितों के दर्द, ग्रामीणों की विद्रूपता तथा शहरीकरण एवं आधुनिकता के सही और स्वच्छ विवरण को किस्सों-कहानियों के रूप में जनता के बीच रखकर वे भविष्य के सुंदर समाज और भारत की कल्पना कर रहे थे। जीवनपर्यंत वे भारतीय सत्य के साथ जो कुरूपता और विद्रूपता जुड़ी हुई है, उसका वर्णन करते रहे। ताकि जनता उसे जान-पहचान कर अपने लिए सत्य के सुंदर रूप की तलाश कर सके। यह भारत निर्माता का ही कार्य माना जाना चाहिए, जिसे उस ज़माने में अन्य प्रकार से राजनेता, समाज-सुधारक, शिक्षाशास्त्री, संस्कृति प्रेमी, चिंतक और दार्शनिक कर रहे थे। इसलिए, आधुनिक भारत के युगपुरुष के रूप में उन्हें देखा जाना चाहिए और इतिहास में भी जगह मिलनी चाहिए। जब गाँधी, जवाहर, अंबेडकर को साहित्य में जगह मिल सकती है तो प्रेमचंद को इतिहास में जगह क्यों नहीं मिल सकती? इसे बच्चों के बीच चर्चा में ज़रूर डाला जाना चाहिए कि प्रेमचंद इतिहास में क्यों नहीं हैं? उन्होंने शिक्षा निरीक्षक की सरकारी सेवा भी की थी। शिक्षा पर उनके वक्तव्यों और विचारों को अगर स्वतंत्र रूप से ध्यान दिया जाए तो शायद आधुनिक भारत के शिक्षाशास्त्रियों की श्रेणी में भी वे आसानी से आ सकते हैं। समाज-सुधारक तो वे थे ही, फिर उन्हें मात्र साहित्य में ही क्यों रखा गया है? क्यों उन्हें उपन्यास/कथा सम्राट ही मानकर आज तक बच्चों को उनके व्यक्तित्व का परिचय कराया जा रहा है? क्यों गरीब, मज़दूर, किसान, शोषित, पीड़ित जनता (जिसमें बहुतायत निरक्षर है) के बीच चर्चा में प्रेमचंद नहीं हैं? क्या आधुनिक भारत में कोई दूसरा व्यक्तित्व है, जिन्होंने आजीवन इन्हीं गरीब, शोषित, किसान, मज़दूर और कमज़ोर जनता के हित में लेखन कार्य किया हो? बेशक वहाँ मात्र प्रेमचंद दिखेंगे। क्योंकि प्रेमचंद अप्रैल 1936 में भारतीय साहित्य परिषद् नामक लेख में लिखते हैं कि –

"पुराने ज़माने में साहित्यकार केवल समाज का भूषण मात्र होता था, उसका संचालन और लोग करते थे, मगर नये ज़माने का साहित्यकार इतना संतोषी नहीं है। वह समाज के परिष्कार में दखल देना चाहता है, राजनीतिज्ञों की गलतियों को सुधारना चाहता है, जो काम व्यवस्थापक लोग कानून और दण्ड विधान से करना चाहते हैं, वही काम वह आत्मा को जगाकर आंतरिक आदेशों से पूरा करने का इच्छुक होता है। समाज में उसने अपना एक स्थान बना लिया है, और आज कोई उन्नत राष्ट्र उसकी अवहेलना नहीं कर सकता।" इसलिए वे कहते हैं कि "साहित्य अब केवल भक्ति और शृंगार नहीं है, वह समाजशास्त्र भी है, धर्मशास्त्र भी है और सब कुछ है जिस पर राष्ट्रों का अस्तित्व है।"

साहित्यकार के बारे में भी उन्होंने कहा है कि "साहित्यकार का काम केवल पाठकों का मन बहलाना नहीं है, यह तो भाटों, मदारियों, विदूषकों और मसखरों का काम है। साहित्यकार का पद इससे

कहीं ऊँचा है। वह हमारा पथ-प्रदर्शक होता है। वह हमारे मनुष्यत्व को जगाता है, हमारे अंदर सद्भावों का संचार करता है, हमारी दृष्टि को फैलाता है। कम से कम उसका यही उद्देश्य होना चाहिए।" साहित्य और साहित्यकार की दावेदारी करने-कराने वालों को प्रेमचंद के साहित्यकार वाले दायित्व बोध से भी सीख लेने की ज़रूरत है, जिसे बच्चों को भी बताया जाना चाहिए। इससे राष्ट्रवाद, मानववाद, लोकतंत्रवाद और विश्ववाद को बढ़ावा ही मिल सकता है। इसलिए, बच्चों के बीच चर्चा में प्रेमचंद के उपर्युक्त मुद्दों को लाने की आवश्यकता है, जिससे न केवल शोषित-पीड़ित जनता के जागरणकर्ता को, बल्कि उनके द्वारा उनके हक में खुली ज़ुबान को आज भी जागरण के लिए उपयोग में लाया जा सके तथा नव उपनिवेशवादी शक्तियों के साथ गरीब, किसान, मज़दूर, पीड़ित-शोषित जनता के जनसंघर्ष को ज़िंदा रखा जा सके। इससे साहित्यकारों के सही सरोकार और सही साहित्यकारों को भी जानने-पहचानने में मदद मिलेगी। बच्चों के लिए यह उनके शैक्षिक स्तर के ज्ञान की दुनिया के विकास की धूरी साबित हो सकता है, क्योंकि वह जो भी पढ़ता है, किसी के लिखे हुए को ही पढ़ता है और लेखक साहित्यकार के सहारे ही उन्हें सही, सजग और सबल मनुष्य बनने का संबल प्राप्त होता है।